लीला कैवल्य वाहिनी

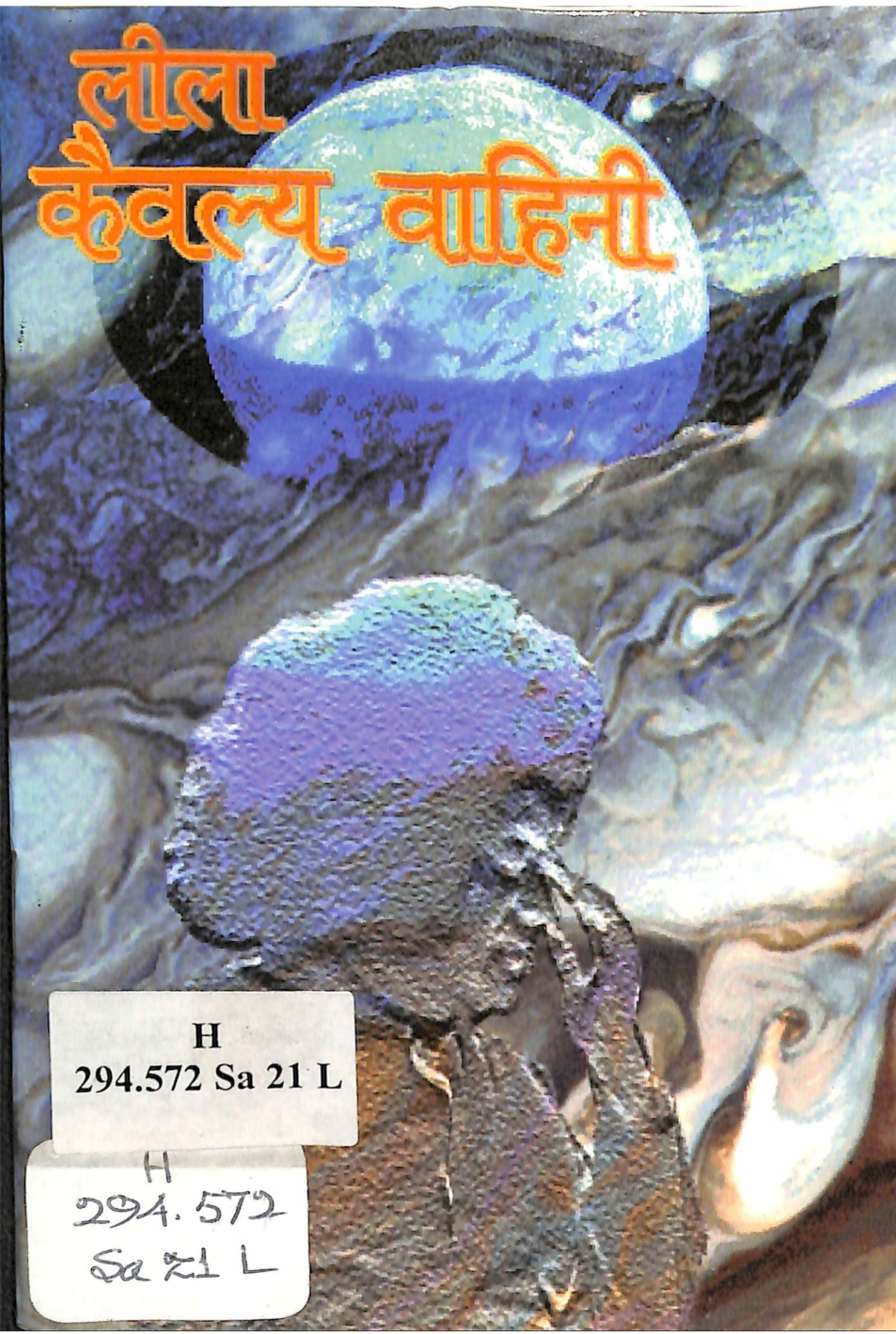

H
294.572 Sa 21 L

H
294.572
Sa21L

लीला कैवल्य वाहिनी

भगवान श्री सत्य साई बाबा

प्रकाशक : श्री सत्य साई बुक्स एण्ड पब्लीकेशन्स ट्रस्ट (दिल्ली)
ब्लाक " ए " कालकाजी ऐक्सटैंशन एरिया,
नई दिल्ली - 110019

Library IIAS, Shimla
H 294.572 Sa 21 L
00097919

अनुवादक : बजरंग सिंह

मूल्य : 9 रुपये

मुद्रक : कंवल किशोर एण्ड कम्पनी, 2826/18 बीडनपुरा,
करोलबाग, नई दिल्ली - 110005, फोन : 5724370

आमुख

वेद परमात्मा के श्वास से उद्भूत हुए; उनका प्रत्येक अक्षर पवित्र है, प्रत्येक शब्द मंत्र है जो एक ही पावन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रबोधन करता है। सभी हृदय एक ही पावन प्रेरणा से प्रेरित होने चाहिए, सभी विचार उदात्त उद्देश्यों से प्रेरित, पवित्र लक्ष्यों की ओर निर्देशित होने चाहिए।

यह जगत बड़ा मोहक है क्योंकि यह अपने रूप में अति आकर्षक है, यद्यपि है यह मिथ्या ही। यह दृश्यमान प्रपंच क्षीण होता जा रहा है, नश्वर है। जब इस सत्य की अनुभूति हो जाती है, व्यक्ति को परमात्मा की लीला का और परम शाश्वत सत्य का बोध हो जाता है।

'लीला कैवल्य वाहिनी' (जो मूल रूप में 'सनातन सारथी' मासिक पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई थी), भगवान श्री सत्य साई बाबा की दैविक लेखनी से प्रवाहित एक ऐसी पवित्र धारा है जो साधक की समस्त बाधाओं—जैसे संदेहों और हठधर्मिताओं, निरर्थक तर्कों और क्षुद्र कल्पनाओं को विगलित कर देती है।

हम इसे भगवान का असीम अनुग्रह मानते हैं कि 'सनातन सारथी' मासिक में धारावाहिक के रूप से प्रकाशित लेखों को एक पुस्तक के रूप में भगवान के 65 वें जन्म दिवस पर, जो कि उनके अवतार की घोषणा का 50 वां वर्ष भी है, भगवान के चरण कमलों में समर्पित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

लीला कैवल्य वाहिनी

आध्यात्मिक साधनायें जैसे पूजा, भजन, ध्यान परमात्मा के प्रति, उच्चत्तर शक्तियों के प्रति भक्ति से प्रेरित होती हैं। उनकी प्रभावकारिता के सम्बन्ध में उन लोगों को विवादों में नही पड़ना चाहिए जो यह नहीं जानते कि इनकी कितनी गहराइयाँ हैं और वे कितनी ऊँचाइयों तक पहुँचा सकती हैं। इनकी प्राप्ति और निर्णय तो केवल वास्तविक अभ्यास से, साधना से ही हो सकता है। इसका प्रमाण तो केवल व्यक्तिगत अनुभव में ही निहित है।

पारमार्थिक जीवन की आकांक्षा तो साधक में परम तत्व की खोज अथवा परमानन्द की प्राप्ति की जिज्ञासा से उत्पन्न होती है। आकांक्षा की प्राप्ति की जिज्ञासा से उत्पन्न होती है। आकांक्षा मात्र से सफलता नहीं मिलती। आध्यात्मिक साधना आवश्यक होती है। इससे पहले कि व्यक्ति इस ओर अपने कदम बढाये उसे अपना आत्म निरीक्षण-परीक्षण करना चाहिए और यह निर्धारित करना चाहिए कि उच्चाकांक्षायें और अभिवृत्तियाँ क्या हैं। समकालीन धर्म (प्रचलित मत-विश्वास) जो जिज्ञासुओं और साधको का मार्गदर्शन करने का दावा करते हैं, युवकों में इस दिशा में आगे बढने का विश्वास पैदा नहीं करते। युवक सोचते हैं कि कुछ धर्म जिस युग में उद्‌भूत हुए उसी काल की दशाओं के अनुरूप बने हैं और अब पुराने पड़ गये हैं, वर्तमान के अनुकूल नहीं रहे हैं। कुछ विशेषरूप से क्षेत्र विशेषों या राज्यों से, देशों से जुड़े हैं। कुछ विदेशियों द्वारा आरोपित और उनके द्वारा ढाले गये हैं। कुछ उन्हें अनुपयुक्त और हानिप्रद लगते हैं। उच्चत्तर जीवन के अभिलाषी युवा साधक और जिज्ञासु सोचते हैं कि यदि उन्होंने साधना के मार्ग अपनाये

तो उनका उपहास होगा। इसलिए वे अनवरत वार्तालापों में उलझे रहते हैं अथवा सैकड़ों पुस्तकों के पन्ने पलटते रहते हैं। अनेक धर्मों द्वारा निर्धारित किसी भी साधना पथ को नहीं अपनाते। ऐसे आलोचक और विवादी लोग भ्रांतियाँ पैदा करते हैं और स्वयं ही उनका रस लेते हैं।

लाखों पुस्तकों से संगृहीत विद्वता से, ध्यान के माध्यम से उपलब्ध ज्ञान का एक कण भी कहीं अधिक मूल्यवान होता है। ज्ञान स्फुरण, चाहे वह कितना भी कम हो, एक बहुमूल्य उपलब्धि होती है। यह व्यक्तिगत साधना की उत्पत्ति होती है और एक अविवादास्पद साधिकारिक अनुभव। इस ज्ञान के कण (बीज) को बोकर और विकसित कर लेने पर सारे विवाद और आलोचनायें समाप्त हो जायेंगी। सत्य के पूर्ण प्रकाशित हो जाने तक सारे तर्क जीव के निचले स्तर तक ही सीमित रहते हैं। आध्यात्मिक साधना के पथ पर चलने के लिए उत्सुक व्यक्ति के लिए आत्म-विश्वास अनिवार्य होता है।

एक शब्द उन लोगों के लिए जो सांसारिक दायित्वों और चिन्ताओं के बोझतले दबे हुए हैं और उन लोगों के लिए जो अपने आपको किन्हीं कारणों से परमात्मा से प्रार्थना करने तक के लिए असमर्थ घोषित कर चुके है अथवा जिनका परमात्मा में विश्वास तक नहीं है: बहुत बड़ी संख्या में ऐसे लोग हैं जो अपने जीवन के दिन प्रसन्नता पूर्वक बिताते हैं। तुम भी प्रसन्न थे और अब भी हो। किन्तु प्रत्येक को एक दिन मिट जाना हैं जैसे कि पहले की पीढियाँ मिट गयीं। अतः प्रत्येक के न केवल सुख की प्राप्ति के लिए बल्कि उससे भी कहीं अधिक मूल्यवान मन की शान्ति और अनुकरणीय आदर्श जीवन की प्राप्ति के लिए आकांक्षा रखनी चाहिए और उस की उपलब्धि के लिए प्रत्येक उपयुक्त साधन अपनाना चाहिए।

मानव के रूप में जन्म लेकर व्यक्ति को अनुपम मानवीय प्रकृति को नहीं त्यागना चाहिए। उसे एक क्षण के लिए भी मानव की मौलिक विशेषताओं को नहीं भूलना चाहिए। किसी को भी पशुता के

निम्न स्तर तक नीचे नहीं गिरना चाहिए; अथवा उससे भी बुरे और निकृष्ट आसुरी स्तर तक पतित नहीं होना चाहिए। मनुष्य को इस बात का दृढ संकल्प करना चाहिए कि वह अपने आप को पतन के गहरे गर्तों में कभी नहीं गिरने देगा। इस प्रकार के संकल्प को केवल आध्यात्मिक मार्ग पर चल कर ही सक्रिय बनाया जा सकता है और उसका सतत रूप से प्रतिपालन किया जा सकता; केवल आध्यात्मिक पथ को अपना कर ही इस प्रकार की उत्कट इच्छा को जागृत और सशक्त किया जा सकता है।

दैनिक जीवन में उठने वाली समस्याओं का सफलता-पूर्वक सामना करने का सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए इस बात पर बल देना आवश्यक है कि व्यक्ति में न्यायप्रियता, सद्गुणसम्पन्नता और आध्यात्मिक श्रेष्ठता के साथ-साथ बुद्धिमत्ता और कुशलता भी हो। इन दोनों ही गुणों और योग्यताओं की उपलब्धियाँ जीवन में प्रगति के लिए इतनी ही अनिवार्य हैं जितनी कि एक पक्षी के लिए उसके दोनों पंख अथवा एक गाड़ी के लिए उसके दोनों पहिए। सर्वोच्च शिखर तक पहुँचने वाले उच्चतर मार्ग का महत्व, केवल जगत के प्रपंच को समझ लेने और अनुभव कर लेने पर ही ज्ञात होता है।

यह जगत बड़ा मोहक है क्योंकि यह अपने रूप में अति आकर्षक है, यद्यपि है यह मिथ्या ही। यह दृश्यमान प्रपंच क्षीण होता जा रहा है, नश्वर है। जब इस सत्य की अनुभूति हो जाती है, तब व्यक्ति को परमात्मा की लीला का और परम शाश्वत सत्य का बोध हो जाता है।

चैतन्य बोध की यह स्थिति धन-सम्पत्ति के अम्बार लगाकर अथवा सांसारिक शक्ति और सत्ता ग्रहण कर अथवा ज्ञान और कुशलता अर्जित कर नहीं प्राप्त की जा सकती। इसकी प्राप्ति तो आत्मचेतना के सभी पहलुओं के शुद्धीकरण के द्वारा और पूर्ण उत्साह एवं तत्परता के साथ खोज में निरत रह कर की जा सकती है।

इस खोज के दौरान विभिन्न बाधाओं का जैसे संदेह और हठधर्मिताओं, निरर्थक तर्कों और क्षुद्रकल्पनाओं का आना स्वाभाविक ही है।

आने वाले युगादि (नववर्ष) पर्व के दिन से यह धारावाहिक 'लीला कैवल्य वाहिनी' के नाम से प्रकाशित होगा जो सारी ही बाधाओं को विगलित कर तुम्हें आनन्द से ओत-प्रोत कर देगा। यह तुम्हें आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग पर आगे बढायेगा। तब तक संदेश की प्रतीक्षा करो।

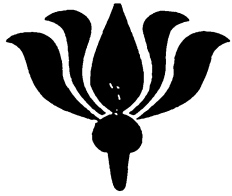

साई–साधक संवाद

साधक : भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठावान सभी लोग वेदों को जीवन के प्रत्येक पक्ष के लिए प्रामाणिक स्रोत मानते हैं। वे दृढता के साथ कहते हैं कि उनके विश्वासों की जड़ें वेदों में हैं। वेद का सही अर्थ क्या है? क्या कारण है कि वेदों ने इतना अधिक महत्व ग्रहण कर लिया है?

साई : मेरे प्रिय! भारत में जन्म लेकर, अपने को भारतीय कहलाते हुए भी तुम्हें यह ज्ञात नहीं कि वेद का अर्थ क्या है? अच्छा! वेद नाम है दैविक ज्ञान के भण्डार का। वेद उस परम शाश्वत सत्य की शिक्षा देता है जो तीनों कालो 'भूत, वर्तमान और भविष्य' में अपरिवर्तनीय और असंशोधनीय रहता है, वेद त्रिलोकों की सुख-शान्ति और कल्याण को सुनिश्चित करता है। यह मानव समाज को सुरक्षा और शान्ति प्रदान करता है। वेद ऐसे शब्दों का समाकलन है जो सत्य है; वेद के प्रत्येक शब्द का, सत्य का उन ऋषियों ने प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया था जिन्होंने अपनी प्रबुद्ध विमल चेतना में उन्हें प्राप्त करने की क्षमता अर्जित करली थी। वास्तव में शब्द ब्रह्म की श्वास ही है। इस तथ्य पर ही वेद का अनुपम महत्व आधारित है।

साधक : किन्तु सांसारिक जीवन के क्षेत्र में, दैनिक जीवन पर, भौतिक स्तर पर, वेदों से किस प्रकार के प्रकाश की, ज्ञान की आशा कर सकते हैं?

साई : इस संसार में सभी प्राणी, जिसकी उन्हें चाह होती है, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और जिसे वे पसंद नहीं करते उससे बचते हैं। यह जानलो कि वेद, इन दोनों ही प्रयासों में सफलता कैसे प्राप्त की

जाय, इसकी शिक्षा देता है। कहने का अर्थ है कि वेद यह निर्धारित (सूत्रबद्ध) करता है कि हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। जब वेद की इन आज्ञाओं और निषेधों का पालन किया जाता है तब हम जो हितकर है, शुभ है उसका अर्जन कर सकते हैं तथा जो अहितकर है, अशुभ है उससे बच सकते हैं। वेद का भौतिकता और अध्यात्म दोनों से, इहलोक और परलोक दोनों से भी सम्बन्ध है। यदि सत्य कहें तो सारा जीवन वेद से पूरित है। कोई वेद आज्ञाओं के पालन से बच नहीं सकता। वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है ज्ञान। इस प्रकार वेद में सारा ज्ञान निहित है। मनुष्य और पशु का भेद ज्ञान से ही होता है। जिसमें ज्ञान होता है वही मनुष्य है अन्यथा 'ज्ञान विहीन नर पशु समाना'।

साधक : कहते हैं कि वेद असंख्य हैं, उनका कोई अन्त नहीं है। क्या वे सभी पूर्ण ज्ञान के भण्डार हैं?

साई : 'अनन्तो वै वेदाः'। वेद अनन्त हैं। प्रारम्भ में केवल एक वेद था। बाद में एक से तीन और हुए और इसके परिणामस्वरूप कुल चार वेद हो गये।

साधक : एक को अनेक में क्यों विभाजित किया गया? इससे किस विशेष आवश्यकता की पूर्ति होती है।

साई : एक वेद क्योंकि अति विशाल और सीमा रहित था, अतः सामान्य व्यक्तियों को उसका अध्ययन करना बड़ा कठिन कार्य था। उसके पूर्ण अध्ययन की कोई समय सीमा नहीं थी। इसलिए जो अध्ययन करने के इच्छुक थे वे भी भय से त्रस्त हो जाते थे। अतः बहुत ही कम लोग वेदाध्ययन के प्रति अपनी उत्सुकता प्रकट करते थे। इन कारणों से जो वेदाध्ययन करना चाहते थे उनके लिए अध्ययन को सम्भव बनाने के लिए कुछ करना आवश्यक हो गया था। इसलिए वेद में जितनी ऋक् या ऋचायें थी उन्हें विषयों के अनुसार चार भागों में विभाजित किया गया और उन्हें ऋग्वेद संहिता, युजर्वेद संहिता, सामवेद संहिता और

अथर्वेद संहिता नाम दिये गये। ऋक् या ऋचाओं के ज्ञान को ऋग्वेद कहते हैं। यजुः का अर्थ है पूजा। साम का अर्थ है संगीत। अथर्वेद में मंत्र, औषधों और तरह-तरह के टोटकों, यन्त्रों के प्रयोग दिये गये हैं।

साधक : वह व्यक्ति कौन था जिसने इन वेदों को संहिता बद्ध किया?

साई : वेदों का संकलन व्यास ने किया जिन्हें नारायण (भगवान विष्णु) का अंशावतार माना जाता है। वे पराशर के पुत्र थे। वे स्वयं एक महान ऋषि थे और उन्होंनें सभी शास्त्रों और धर्म ग्रंथों का अध्ययन किया था। वे एक कुशल समन्वयक (सवर्गीकरण कर्ता) थे। उन्होंने मानवता के कल्याण के लिए वेदों को संहिताबद्ध किया और सभी के लिए धर्मानुकूल जीवन बिताना सुलभ बनाया। उन्होंने वेदों को चार भागों में बांटा और पांच संहिताएँ तैयार की।

साधक : जैसा कि अभी आप ने समझाया चार वेद-चार संहिताएँ हैं। यह पाँचवी संहिता किस उद्देश्य की पूर्ति करती है? यह एक अतिरिक्त संहिता कैसे आयी?

साई : यजुर्वेद दो भागों में विभाजित है, 'कृष्ण-यजुर्वेद संहिता' और 'शुक्ल यजुर्वेद संहिता'। इस प्रकार कुल पाँच संहिताएँ हो जाती हैं। यह क्रम यहीं नहीं रुका। इन तीनों संहिताओं में से प्रत्येक का तीन अलग-अलग सहायक अंगों के रूप में और आगे विकास हुआ। ये ग्रंथ ज्ञान-बोध की विभिन्न स्थितियों और चेतना के विभिन्न स्तरों पर लोगों को प्रबुद्धता प्रदान करने के लिए अन्वेषणोपरान्त प्रकट हुए। इनका उद्देश्य मार्ग दर्शन प्रदान करके प्रत्येक को लाभ पहुँचाना था जिससे कि वे संकटों के सागर को पार कर सकें। इसलिए इन ग्रंथों में कहीं भी अन्तर्द्वन्द नहीं दिखायी देता।

साधक : वेदों की संहिताओं के ये तीन विस्तार क्या हैं और इन उपसंगी ग्रंथों के क्या नाम हैं?

साई : ये हैं ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्।

साधक : ब्राह्मण ग्रंथ क्या हैं?

साई : ब्राह्मण ग्रंथ वेद का वह भाग है जो विविध यज्ञों के विषय में मंत्रों के विनियोग तथा विधियों का प्रतिपादन करता है। प्रत्येक वेद का अपना पृथक-पृथक ब्राह्मण है जैसे ऐतरेय (ऋग्वेद), तैत्तिरेय (यजुर्वेद), शतपथ (यजुर्वेद), गोपथ (अथर्वेद), पंचविंश (सामवेद) आदि।

साधक : और आरण्यक क्या हैं?

साई : ये गद्य और पद्य दोनों में हैं। ये मुख्य रूप से वानप्रस्थों के लिए हैं। वानप्रस्थ आश्रम जीवन का तीसरा आश्रम है जो ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रमों के पश्चात आता है। अरण्य का अर्थ होता है जंगल, वन। अर्थात् जनशुन्य वनों में रह कर ऋषियों ने जिस गम्भीर और चिन्तनपूर्ण विद्या का अध्ययन, परिशीलन और ध्यान किया उनका नाम 'आरण्यक' है। कर्त्तव्यों और दायित्वों की विवेचना होने के कारण आरण्यकों को कर्मकाण्ड भी कहा जाता है: (इन में वानप्रस्थ आश्रम में जीवन बिताने वालों के यज्ञों, महाब्रत आदि का वर्णन है) कर्मकाण्ड, ब्रह्मकाण्ड की, आध्यात्मिक जीवन की पूर्णावस्था की, पूर्व स्थिति है।

साधक : स्वामी! कुछ ग्रंथों के लिए मैंने 'ब्रह्म काण्ड' का उपयोग सुना है। इसका किससे सम्बंध है?

साई : ये ग्रंथ यज्ञानुष्ठान के विस्तृत विवरणों सहित सत्याचरण के नियमों से सम्बन्धित हैं। ये रीतिबद्ध अनुष्ठान पद्धति के विशेष लक्षणों का और नैतिक नियमों का प्रतिपादन करते हैं।

साधक : और, स्वामी! उपनिषद क्या हैं?

साई : उपनिषदों का ज्ञान विवेक से पाया जा सकता है। इनका ज्ञान प्राप्त किया ही जाना चाहिए। धर्म-शास्त्रों में मानव जीवन के चार लक्ष्य निर्धारित किये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। विद्या दो प्रकार की होती है— अपरा विद्या (निम्न) और परा विद्या (उच्चत्तर-आत्मा सम्बन्धी)। वेदों के तीन भाग अपरा विद्या (जीवन के प्रथम तीन लक्ष्यों धर्म, अर्थ और काम) से सम्बन्धित हैं वहीं अंतिम भाग—उपनिषद् परा विद्या (जीवन के चौथे लक्ष्य मोक्ष) से सम्बन्धित है।

साधक : किन्तु वेदान्त शब्द कैसे आया?

साई : उपनिषद् स्वयं ही वेदान्त हैं। वेदों को कण्ठस्थ कर लेने का कोई उपयोग नहीं, वेदान्त को समझ लेना और आत्मसाथ करना आवश्यक है। जब तक वेदान्त पर अधिकार प्राप्त नहीं किया जाता ज्ञान की पराकाष्ठा नहीं प्राप्त की जा सकती।

साधक : स्वामी! वेदों को बहुधा श्रुति कहते हैं, क्यों?

साई : वेद नौ नामों से ज्ञापित है; श्रुति उनमें से एक है।

साधक : वे क्या हैं?

साई : वे हैं— श्रुति, अनुश्रव, त्रयी, आम्नाय, सामाम्नाय, छन्दस, स्वाध्याय, आगम, निगमागम।

साधक : इन नामों में से प्रत्येक किसी स्पष्ट विशेषता को इंगित करता होगा। मै यह जानने का अच्छुक हूँ कि ये नाम कैसे उद्भूत हुए और उनकी क्या विशेषतायें हैं। समझाने की कृपा करें।

साई : निश्चित, इन नामों के आन्तरिक अर्थ हैं। **श्रुति** का अर्थ है 'जो सुना गया है'। गुरु वैदिक ऋचाओं का सस्वर पाठ करता है और शिष्य दत्त-चित्त पूर्ण एकाग्रता के साथ सुनकर उसे उसी रूप में सस्वर दोहराता है। यह क्रम तब तक दोहराया जाता है जब तक शिष्य प्रत्येक ऋचा पर पूर्ण अधिकार नहीं कर लेता। इस प्रकार 'श्रुति' पूर्ण संगत है। **'अनुश्रव'** नाम का भी वही अर्थ हैं 'जो क्रमानुसार सुना गया है, बार-बार सुना गया है। तीसरा नाम है **'त्रयी'** जिसका अर्थ होता है तीन। प्रारम्भ में केवल तीन ही वेद थे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। केवल ये तीन वेद ही महत्वपूर्ण माने जाते थे। इसलिए 'वेद त्रयी' शब्द का उपयोग होता था जो अब तक प्रचलित है। **'आम्नाय'** शब्द 'म्ना' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है सीखना, परिश्रम पूर्वक याद करना, अध्ययन करना। वेदों को सतत रूप से परिश्रम पूर्वक सीखा और याद किया जाता था, उनका अध्ययन और स्मरण किया जाता था अतः उन्हें सामूहिक रूप से 'आम्नाय' से जाना गया और इसी प्रकार 'सामाम्नाय' नाम है।

'छन्दस' का अर्थ है छन्द बद्ध काव्य रचना जो संगीत बद्ध हो सके, जो ज्ञेय हो जैसे साम वेद। इसलिए वेदों को इस नाम से जाना गया।

'स्वाध्याय' नाम वेदों का इसलिए पड़ा क्योंकि वेद गुरु-शिष्य परम्परा से अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया (स्वाध्याय) द्वारा गुरु से शिष्य, पिता से पुत्र पीढी दर पीढी हस्तांतरित होते हैं।

'आगम' का अर्थ है जो आया है, जिसकी उत्पत्ति हुई हैं 'निगमागम' उसी का विस्तृत रूप है। वेद ब्रह्मा की श्वास से उत्पन्न हुए हैं; उनका एक-एक अक्षर, शब्दांश पावन है। प्रत्येक शब्द मंत्र है। वेद सभी मंत्र हैं।

साधक : मंत्र? मंत्र का क्या अर्थ है?

साई : मंत्र निर्धारित लक्ष्य का प्रतिपादन है, प्रस्तुतीकरण है। कहने का अर्थ है मनन को प्रचोदित और प्रोन्नत करता है। 'मं' का अर्थ है सूक्ष्म परीक्षण करना, खोज लगाना और 'त्र' का अर्थ है त्राण करना, मुक्ति दिलाना। संक्षेप में कहें तो मंत्र वह होता है, जिस पर मन द्वारा मनन करने पर, त्राण प्राप्त होता है, रक्षा होती है। जब यज्ञ होम आदि कर्मकाण्ड और अनुष्ठान किये जाते हैं तब व्यक्ति को उनकी प्रकृति और महत्व को सतत रूप से स्मरण में रखना पड़ता है। इस उद्देश्य के लिए जो सूत्र, लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बार-बार दोहराये जाते हैं मन्त्र कहलाते हैं। आजकल जो लोग ये कर्मकाण्ड करते हैं वे मंत्रों का यंत्रवत् उच्चारण करते हैं और वे उनकी जिह्वा पर ही घूमते रहते हैं। वे मंत्र के अर्थ और भावों की गंभीरता की ओर कोई ध्यान नहीं देते। जब मंत्रों का अनर्गल उच्चारण किया जाता है, तब उनका कोई फल प्राप्त नहीं होता। उनका फल तो तभी प्राप्त होता है जब व्यक्ति मंत्रों के महत्व, भाव और अर्थ को समझते हुए शुद्ध उच्चारण करता है तभी उसे सुफल की प्राप्ति होती है। प्रत्येक वेद की अनेक शाखायें हैं और वैदिक विद्वान को प्रत्येक शाखा के पूर्ण निर्देशों और उद्देश्यों को समझना होता है।

साधक : शाखायें क्या है?

साई : शाखा का अर्थ है अंग, मुख्य वेद से निकला हुआ ग्रंथ। किसी भी वृक्ष की शाखायें होती हैं और प्रत्येक शाखा के टहनियाँ और पत्तों के गुच्छे होते हैं। जब इन सब को एक साथ देखते हैं तभी वृक्ष प्रकट होता है। प्रत्येक वेद की बहुसंख्यक मुख्य शाखायें हैं और उपशाखायें हैं। इस समय वे सभी प्रकाश में नहीं आयी हैं। केवल कुछ का ही पता चला है और उनका अध्ययन किया गया है। जो शाखायें स्मृति और अभ्यास से लुप्त हो गयीं है उनकी संख्या हजारों में और सम्भवतः लाखों में भी हो सकती हैं। कोई भी उनको पुनः नहीं ला सकता। इसलिए शास्त्र घोषणा करते हैं। "अनन्तो वै वेदाः"— वेदों का अन्त नहीं हैं, वे अनन्त हैं। अतः महान ऋषियों और मुनियों द्वारा किसी एक वेद या दूसरे की कुछ शाखाओं का ही अध्ययन और अभ्यास किया जा सका।

साधक : ऋग्वेद क्या है? उसे यह नाम कैसे दिया गया?

साई : ऋग्वेद में देवों की स्तुति के बहुत मंत्र-समुदाय का संकलन किया गया है। ऋग्वेद उन देवों के लिए भी प्रयुक्त होता है जिनकी स्तुति की गयी है।

साधक : इस वेद में किस देव की सर्वाधिक स्तुति की गयी है, उसका यशोगान किया गया है?

साई : इस वेद में अनेक देवों की स्तुतियाँ उपलब्ध हैं जिनमें तैंतीस देवता महत्व पूर्ण हैं।

साधक : क्या इन देवों के कोई विशेष रूप हैं या वे मानव रूप में ही हैं?

साई : उन के मानवों के समान ही रूप हैं

साधक : कृपया उनमें से एक दो के स्वरूपों के सम्बन्ध में बतायें।

साई : सूर्य देव है, उसकी किरणें उसकी भुजायें हैं और अग्नि की ज्वालायें उसकी जिह्वायें हैं। इस प्रकार उनका चित्रण होता है।

अग्नि देव अरणि लकड़ी (समिधा) के दो टुकड़ों के पारस्परिक संघर्षण से पैदा होते हैं किन्तु जैसे ही वे प्रकट होते हैं अपने माता-पिता अर्थात् अरणि के दोनों टुकड़ों को खा जाते हैं, खा कर भस्म कर डालते हैं, यद्यपि अरणि के संघर्षण से ही अग्नि की उत्पत्ति होती है। ऐसा वर्णन किया जाता है कि अग्नि की दस दासियाँ हैं। वे हैं दसों अंगुलियाँ जो अरणि को पकड़ती हैं और उनका घर्षण हेतु संचालन करती हैं। जब-जब अरणि की समिधाओं का विधिपूर्वक घर्षण होता है अग्नि, अग्नि देव उत्पन्न होते हैं अतः उन्हें 'बहुजन्मा' कहते हैं। धूम (धूआँ) से अग्नि देव की उपस्थिति प्रकट होती है अतः धूमको को अग्नि का केतु (ध्वज) कहते हैं। इसलिए अग्नि का एक और नाम 'धूमकेतु' है। धूमकेतु नाम से ही अग्नि को आमंत्रित किया जाता है।

अग्नि को यज्ञ-सारथी भी कहते हैं क्योंकि वह उन देवताओं को अपने रथ में यज्ञ स्थल पर लाते हैं जहाँ उन देवों को यज्ञ की पवित्र अग्नि में आहुतियाँ दी जाती हैं। अग्नि उन आहुतियों को उन देवताओं तक पहुँचाता है जिन देवताओं को उद्दिष्ट कर आहुतियाँ दी जाती हैं। प्रत्येक यज्ञ में अग्नि देव सर्वाधिक महत्व वाले भागीदार होते हैं; अतः उनकी सभी चार भूमिकाओं में स्तुति होती है— ऋत्विज्, होता, पुरोहित और ब्रह्मा।

अग्नि मनुष्य का निकटतम मित्र है क्योंकि उसके बिना जीवन अति दुर्लभ है। मानव क्रिया का, चाहे वे शरीर के आन्तरिक हो अथवा बाह्य अग्नि का सिद्धान्त सब का मूलाधर है। अतः अग्नि को गृहपति कहते हैं। अग्नि को किसी से न कोई राग होता है और न ही कोई द्वेष। अग्नि का सभी प्राणियों के साथ, सभी वंशों, जातियों और प्रजातियों के बीच बिना किसी भेदभाव के, एक समान व्यवहार होता है।

साधक : ऋग्वेद की मुख्य शिक्षा क्या है?

साई : ऋग्वेद एकता की शिक्षा देता है। वह सभी मनुष्यों को एक समान पवित्र इच्छाओं के पालन का उपदेश करता है। सभी हृदय एक

समान उदात्त प्रेरणाओं से प्रेरित होने चाहिए; सभी विचार अच्छे उद्देश्यों से अच्छे लक्ष्यों की ओर निर्देशित होने चाहिए। सभी मनुष्यों को एक ही सत्य के मार्ग पर चलना चाहिए क्योंकि सभी 'उस एकमेव' के ही प्रकट रूप हैं। आजकल लोग विश्वास करते हैं कि मानवता की एकता का पाठ नया है और उसकी ओर प्रगति करना अति प्रशंसनीय कार्य है। किन्तु मानवता की एकता का विचार बिल्कुल नया नहीं है। ऋग्वेद के काल में मानवीय एकता की धारणा का, आजकल की एवज में, कहीं स्पष्टता और प्रबलता के साथ उद्घोष हुआ है। यह ऋग्वेद का वरेण्य सर्वप्रधान आदर्श है।

सब परमात्मा के अंश है, उसकी शक्ति के, उसकी ऊर्जा के। आत्मा, जो प्रत्येक में सत्य है, वह वास्तव में 'उस एकमेव' का ही अनेक में प्रकटीकरण है। वेद का निर्देश है कि अन्तर और भेद-प्रभेद नहीं धोपे जाने चाहिए। यह सब को अपने में समाहित कर लेने वाला सार्वभौमिक दृष्टिकोण आज कल के मनुष्यों में नहीं देख जाता, इसका उनमें अभाव है। उन्होंने भेद-प्रभेदों को, अन्तर्द्वन्दों और संघर्षों को कई गुणा बढा लिया है। उनके जीवन संकुचित और सीमित हो गये हैं। प्राचीन काल में, ऋग्वेद ने, इन प्रतिबन्धनात्मक बाधाओं और संकीर्ण भावनाओं को मिटा दिया था और एकता की घोषणा की थी।

साधक : यजुर्वेद क्या है? यह इस नाम से क्यों जाना जाता है?

साई : इस नाम की व्युत्पत्ति 'यज्' धातु से है। इसकी और भी बहुत सी व्युत्पत्तियाँ हैं जिनमें से प्रत्येक का विशेष अर्थ होता है। लेकिन जो अर्थ बहु प्रचलित है वह है 'यज्ञ', 'देव पूजा' और 'दान'। यजुर्वेद में यज्ञों और कर्मकाण्डों का प्राधान्य है और उनका सम्पादन करने के विस्तृत विधि-विधान और नियम प्रतिपादित हैं तथा विभिन्न देवताओं का यज्ञ-याग में आह्वान, आराधन एवं तुष्टीकरण करने के लिए मंत्र दिये गये हैं। अध्वर का अर्थ भी यज्ञ होता है, इसलिए यजुर्वेद को कभी-कभी 'अध्वर वेद' के नाम से जाना जाता है।

साधक : यजुर्वेद क्या शिक्षा देता है?

साई : यजुर्वेद के दो भाग हैं, एक आदित्यष्ट सूर्य परम्परा के चारों ओर केन्द्रित है और दूसरा ब्रह्म परम्परा के चारों ओर। पहले को शुक्ल यजुर्वेद और दूसरे को कृष्ण यजुर्वेद कहते हैं। शुक्ल यजुर्वेद उत्तर भारत में व्यापक है और कृष्ण यजुर्वेद दक्षिण भारत में। कृष्ण-यजुर्वेद ऋग्वेद संहिता के अधिक निकट है। इसमें दिये गये मंत्रों या सूक्तों का उपयोग देवताओं की आराधना और यज्ञ में देवताओं को दी जाने वाली आहुतियों में किया जाता है।

कृष्ण यजुर्वेद की छियासी शाखायें थीं जिनके प्रत्येक के विशेष व्याख्यात्म ग्रंथ थे। किन्तु अध्ययनकर्ताओं और उनका अभ्यास एवं साधना करने वालों के अभाव के कारण अधिकतर शाखाओं का लोप हो गया अथवा फिर अनेक ऐतिहासिक कारणों एवं घटाओं की वजह से वे नष्ट हो गयीं। अब केवल चार शाखायें ही उपलब्ध हैं तथा बयासी समय के चक्रवात में डूब गयीं।

शुक्ल जयुर्वेद की भी सत्तरह महत्वपूर्ण शाखायें थीं उनमें से पन्द्रह काल के कराल गाल में समा गयीं और अब केवल दो ही उपलब्ध हैं। जब हम यह विचार करते हैं कि ये दोनों कितनी गुरुतर और महत्तर हैं तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वेद का अनुपम मूल्य नितान्त अवर्णनीय है। वेदों की महिमा और श्रेष्ठता का आंकलन करने का कार्य ही इतना महान एवं विशाल है कि कोई उसको पूरा नहीं कर सकता। भाषा और कल्पना से वेद अप्राप्य हैं, **"यतो वाचो निववर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सः"** । यह जान लो कि यह सत्य है तथा हर्ष मनाओ, गर्व करो कि तुम इसे जान सकते हो। जिन्हें इस सत्य का बोध हो जाता है वे वास्तव में सौभाग्यशाली हैं; गहरे गोते लगाकर उन्होंने अमूल्य रत्न प्राप्त किये है; उन्होंने जीवन का लक्ष्य, पुरुषार्थ प्राप्त किया है।

साधक : स्वामी आपने कहा है कि वेद नौ नामों से जाने जाते हैं। क्या वेद और भी नामों से जाने जाते हैं?

साई : वाह! क्या नौ ही नाम हो सकते हैं? वेद के और भी अनेक नाम हैं। उदाहरण के लिए, यह प्रश्न के नाम से और प्रथमज नाम से भी जाना जाता है। विभिन्न नाम वेद के विभिन्न पक्षों, शिक्षाओं के संदर्भो, प्रसंगों और विशेषताओं को प्रकट करते हैं।

साधक : प्रश्न? इसका अर्थ क्या है?

साई : परमेश्वर प्रश्न है अर्थात जिसमें पूर्ण पावनता, निर्मलता और ज्ञान है, किसी*, किसी प्रकार का दोष नहीं है; जो विशद्ध ज्ञान है। वेद ज्ञान का मूर्तरूप है। जिन ऋषियों की चेतना निर्मल-पवित्र थी, जिनकी बुद्धि विशुद्ध थी, वे सर्वव्यापी ब्रह्म का अनुग्रह अर्जित कर सके। ब्रह्म ने उन्हें प्रेरित किया और आशीर्वाद दिया जिससे वे ऋचाओं और मंत्रों का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर सके और मंत्र दृष्टा कहलाये। जब उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया, उसका उन्हें पूर्ण ज्ञान हुआ तो उन्होंने ब्रह्म की स्तुति की और उसका प्रश्नगर्भ के रूप में वर्णन किया।

मंत्र दृष्टा ऋषि कर्मफल बन्धनों से मुक्त थे। अतः वे ब्रह्म में लीन हो गये और वे ब्रह्म से पुनः तभी प्रकट होंगे जब प्रलय के पश्चात् सृष्टि रचना का चक्र फिर से प्रारम्भ होगा। अतः उन्हें अजः (अजन्मा) कहते हैं। वेद उन्हें इसी प्रकार से पुकारते हैं। उनका स्वभाव विशुद्ध निर्मल-पवित्र होता है, इसलिए वे भी प्रसन्न कहलाते हैं। अपनी समाधि की स्थिति में ब्रह्म का अनुग्रह प्राप्त करने के इतने वेदनापूर्ण ढंग से व्यग्र हुए कि ब्रह्म अपनी इच्छा-शक्ति से सव्यं प्रकट हुए और उन्हें ब्रह्म यज्ञ की दृष्टि प्रदान की।

साधक : यह ब्रह्म-यज्ञ क्या है?

साई : ब्रह्म यज्ञ का अर्थ है स्वाध्याय, वेदों का गहन अध्ययन और अनुपालन, कर्मकाण्ड करना। जो ऋषि अज (अजन्मा) कहलाते हैं उन्हें ब्रह्म से उस सत्य को संचारित करने को प्राधिकृत किया जिसका उन्होंने प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया था और उसके फलस्वरूप संसार के कल्याण

* 'प्रज्ञानम् ब्रह्म'

और उन्नति के लिए विधि पूर्वक यज्ञों का विधान किया। वेदों ने केवल उन्हीं को ऋषि माना जो मंत्र दृष्टा थे, मंत्र चेता थे, स्वतः स्फूर्त मुनि थे, परमसत्य के ज्ञाता थे, ब्रह्म और धर्म के अर्थ और स्वीकृत स्वार्थ-त्यागपूर्ण पूजा एवं भक्ति कार्यों (श्रेष्ठ धार्मिक कर्मों) को यज्ञ कहते हैं।

सत्य के प्रति तीव्र उत्कंठा तपस है। ब्रह्म तपस से प्राप्त होता है अतः उसे 'तपोज' कहते हैं और ब्रह्म द्वारा तपस को दिये प्रत्युत्तर को 'देव-वाक्' या 'देव-वाणी' कहा गया है।

तपोज का सामान्य अर्थ है जो तपस् से उत्पन्न हुआ; किन्तु उसका अभिप्राय यह नहीं होता कि तपस् के पूर्व ब्रह्म का अस्तित्व ही नहीं था। ब्रह्म तो नित्य है, शाश्वत है; इसका न आदि है और न ही अन्त; वह कालातीत है। 'तपस् से उत्पन्न' होने का अभिप्राय है तपस् करने वाले व्यक्ति के समक्ष ब्रह्म का स्वयं प्रकट होना। ब्रह्म तो सर्वकालिक है, सदा-सर्वदा है। ब्रह्म ने प्रकट होने की इच्छा की और उसने अपने आप को वाक् द्वारा प्रकट किया। वह शब्द ही वेद का मंत्र है। इसलिए वेद को ईश्वर की, ब्रह्म की वाणी कहा गया हैं; ब्रह्म के ये नाम उसके 'स्वयँभू' और 'तपोज' नामों के साथ अथवा दूसरे स्थानों पर आते हैं।

मैंने प्रस्नगर्भ नाम का उल्लेख किया था। यह ब्रह्म का बड़ा ही अर्थ पूर्ण नाम है। यह अन्न, जल, अमृत और वेद के ज्ञान का द्योतक है। ब्रह्म के गर्भ में ये सारी चीजें होती हैं अतः वह प्रस्नगर्भ है। वेद-स्वरूप में ब्रह्म अपने सत्य की स्वयं घोषणा करता है।

साधक : स्वामी! आपने एक और नाम 'प्रथमज' का भी उल्लेख किया था। उस शब्द के क्या अर्थ है?

स्वामी : वेदत्रयी की वेद में पथमज के रूप में स्तुति की गयी है; "उपस्थाय प्रथमजाम्" इस कथन से यह प्रकट होता है कि विद्या प्रथमज के उपस्थ (सम्मानपूर्वक अध्ययन) द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। जब

तक कोई पवित्र वेद वाक् का पूर्ण विनम्रता और सादर के साथ अध्ययन नहीं करता ब्रह्म ज्ञान (ब्रह्म विद्या) पर अधिकार नहीं प्राप्त कर सकता। इसके लिए वेद का केवल मुख से उच्चारण ही नहीं चाहिए बल्कि वेद की पूर्ण समझ-बूझ के साथ सतत पूजा, सेवा आवश्यक है और साथ में यह बोध भी चाहिए कि प्रत्येक शब्द का अर्थ और अधिकार क्या है। उपरोक्त कथन में यह बात स्पष्ट की गयी है।

साधक : स्वामी! किस वेद में प्रथमज आया है?

साई : ऋग्वेद में प्रथमज और इसी प्रकार का दूसरा शब्द पूर्वज यह इंगित करता है कि इस बात की खोज कर सकना असम्भव है कि वेद सर्वप्रथम कब प्रकट हुआ। वेद आदि रहित है। इसी कारण महर्षि वाल्मीकि ने वाक् को, प्रथम, अगोचर, अगम्य, रहस्यपूर्ण अग्रवाक् कहा है। ब्रह्म की इच्छा (एक से बहु हो जाने की इच्छा) का प्रथम मूर्तरूप 'हिरण्यगर्भ' था; वह भी 'प्रथमज' है। ब्रह्म-विद्या भी प्रथमज है, जैसा कि वेद में उल्लेख है। ब्रह्म और हिरण्यगर्भ दोनों को भी कभी-कभी प्रथमज कहते हैं।

साधक : इन दोनों में से प्रथम कौन है?

साई : ब्रह्म ही प्रथम है। वह है और सदा रहा है, रहेगा। ब्रह्म से ही हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति हुई और वेद भी ब्रह्म से प्रकट हुए। वेद को प्रथमज की संज्ञा उपयुक्त है। ऋषियों ने वेद का अपने अन्तर में श्रवण किया और उसका उच्चारण किया अतः उसे आर्ष (ऋषि द्वारा प्रयुक्त, ऋषि सम्बन्धी) कहा गया।

वेद धर्म का, नैतिक जीवन का, सदाचरण का आदि स्रोत है। जो वेद द्वारा निर्धारित और मीमांसा के नियमों के द्वारा व्याख्यायित कर्त्तव्यों और आदेशों एवं निषेधों का पालन करते हैं वे ही धर्म के अनुगामी कहलाते हैं। जो उनका (आदेशों-निषेधों का) अपनी ही इच्छानुसार अर्थ लगाते हैं वे अधर्म के अनुगामी होते है। यही अर्थ है।

साधक : अर्थ? इसका क्या अभिप्राय?

साई : अर्थ कहते हैं मतलब को, अभिप्राय को, जिससे आशय और विशेषता का ज्ञान होता है। वेद ऋषियों की अति उच्च आत्मिक दृष्टि का प्रकाशन हैं। वैदिक मंत्र ऋषियों द्वारा प्रस्तुत वे अमूल्य निधि हैं जो मनुष्य के लिए मुक्ति प्रदाता हैं। ऐसा ऋग्वेद का कथन है।

वेदों का ब्रह्म विचार उस शब्द से सूचित होता है जिसके अंत में 'स' हो। वेदः का इस कारण अर्थ है धन, ज्ञान और ऐश्वर्य। यहाँ धन का अभिप्राय सांसारिक धन-दौलत और सम्पत्ति से अलग है। इसका आशय उस धन (साधनों) से है जिनके द्वारा परम लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में वेद माता के अनुग्रह से प्राप्त धन जो स्वयं में एक अतिसशक्त ज्ञान है। यही कारण था कि वैदिक ऋषि प्रार्थना करते थे, संतति और ज्ञान धन से परिपूर्ण करदो, ज्ञान जो परम ऐश्वर्य का स्रोत है। ऐसा धन आप की सेवा के लिए उपयोगी है, अतः जब वह मुझे प्राप्त हो जायेगा तो आप भी प्रसन्न होंगे।

साधक : स्वामी! आजकल मनुष्यों में हम ऐसी भावनाएँ नहीं पाते जिससे कि उनके हृदयों से ऐसी प्रार्थनायें निकलें। लोग तो आज कल वैदिक प्रार्थनाओं को ग्रामोफोन के रेकार्ड समान, आदतवश, बिना अर्थ और भाव समझे यंत्रवत् दोहरा देते हैं। क्या ऐसा नहीं है? क्या उन्हें ज्ञान (धन) प्राप्त होता है जो परमेश्वर की सर्वाधिक मूल्यवान निधि है?

साई : मेरे प्रिय! तुम ने अभी स्वयं ने कहा था कि वे वेद पाठ यन्त्रवत् ग्रामोफोन रेकार्ड के समान करते हैं। ऐसा ही कहा था न तुमने? इसलिए वे भी उतना ही ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं जितना एक ग्रामोफोन रेकार्ड। उससे तुम वह बहुमूल्य निधि कैसे पा सकते हो? वृक्ष की कटी हुई टहनी को भूमि में रोप देने से क्या वृक्ष उग सकता है? जो पूर्ण अर्थ और मंत्रों में अन्तर्निहित भावों को जानते हुए वेद पाठ करते हैं केवल वे ही ब्रह्म का अनुग्रह अर्जित कर सकते हैं, ब्रह्म ज्ञान, ब्रह्म विद्या और सकल ऐश्वर्य प्राप्त कर सकते हैं।

साधक : स्वामी! यह तो एक सामान्य बात है कि कोई नहीं होगा ऐसा

जिसे धन की चाह नहीं हो। लेकिन किस प्रकार के धन की चाह होनी चाहिए? वेद धन की इच्छा के किस रूप का अनुमोदन करेगा? इसके सम्बन्ध में वेद का कथन क्या है? मुझे समझाने की कृपा करें।

साई : "वेदम् परमैश्वर्यम्"— वेद परमैश्वर्य है! "वेदयतीति वेद"—जो ज्ञानोपदेश देता है वह वेद है 'सः वेदस्त्वम्'— वेद से ज्ञानोपदेश प्राप्त करो। धर्म का अर्थ उपार्जन प्रगति और समृद्धि (शुभ) की उपलब्धि की इच्छा से किया जाता है। अतः परमेश्वर को भी 'अर्थः' नाम से जाना जाता है। वेद कहता है कि ज्ञान ही धन है जिससे परमेश्वर की प्राप्ति होती है; केवल वेदस् — वैदिक सत्य के नाम के लिए उपयुक्त है। श्रुति का कथन है कि केवल ऐसे धन से ही तृप्ति का, संतोष का आनन्द आराधक और आराध्य दोनों को ही प्राप्त हो सकता है।

ऋग्वेद इस प्रकार के धन की प्रशंसा करता है और इसका 'श्रुत्वाक्' के रूप में उल्लेख करता है, क्योंकि श्रुति ने इसका इसी प्रकार वर्णन किया है संस्तुति की है। वेद उसी धन का वैदिक धन के रूप में अनुमोदन करता है जिसका अर्जन, मानव के मार्ग दर्शन के लिए स्पष्ट रूप से निर्धारित, नैतिक आचरण, और सदाचार के नियमों के अनुसार किया जाय।

साधक : श्रुत्वाक्? स्वामी! इसका क्या अर्थ है?

साई : समृद्धिशाली श्रीमन्त व्यक्ति वह कहलाता है जो पुत्रों और पौत्रों से सम्पन्न परिवार के साथ सुखी हो और विस्मयकारी ऊँचाइयों को भी पार करता हुआ अपनी सांसारिक मनोकामनाओं को पूर्ण करने में सदा सफल रहा हो। नैतिकता, चारित्रिक श्रेष्ठता कहीं अधिक मूल्यवान निधि होती है। ऐसी निधि, ऐसा धन वैदिक आदेशों का ठोस परिणाम होता है। यह धर्म कहलाता है। रामायण के श्री राम को 'धर्म के साक्षात् स्वरूप' (विग्रहवान धर्म) कहकर उनकी प्रशंसा की है। अतः स्वयं परमेश्वर को धर्म के रूप में जाना जाता है। इसलिए यह नाम सार्थक है। सम्पूर्ण विश्व धर्म पर आधारित है (धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा)!

ऐसे पवित्र-पावन धर्म का लोग अपनी-अपनी कल्पनाओं और सनकों के अनुसार अर्थ लगाते हैं कि जिससे उनके स्वार्थों की पूर्ति हो सके। इसलिए धर्म का स्वरूप भयंकर रूप से विकृत हुआ है। वेद और देव शब्दों के नये अर्थ और तात्पर्य निकाल ले गये हैं। वास्तविक अर्थों और प्रक्रिया को वैदिक साहित्य से ही जाना जा सकता है "स्वयं सर्वम् वेत्ति-इति वेदः" (जो स्वयं ही सब कुछ जानता है, वह वेद है)। इस कथन से यह प्रकट होता है कि वेद स्वयं सर्वव्यापक सर्वज्ञ ब्रह्म है। श्रुति उसका मूर्तरूप है, उसकी अभिव्यक्ति है।

साधक : वैदिक मंत्रों में 'स्वाहा' शब्द बार-बार आता है। 'स्वाहा' शब्द का क्या अर्थ है?

साई : अच्छा! सामान्य रूप से यह यज्ञाग्नि में देवताओं को आहुति देते समय उच्चारण किया जाने वाला शब्द है; लोग यह कल्पना करते हैं कि यह वैदिक शब्द नहीं हैं वे तर्क देते हैं कि यह एक पारिभाषिक, क्रियात्मक शब्द है जो केवल कर्मकाण्डों में ही प्रयोग में लाया जाता है। स्वाहा देवी है जिसका इस शब्द से आह्वान किया जाता है। यह शब्द देवताओं को हविस् समर्पित करने का अर्थ सूचित करता है। इस प्रकार इस शब्द के दो अर्थ हैं। जब देवताओं को उनके विभिन्न नामों और रूपों से हविस् अथवा अन्य सामग्री समर्पित की जाती है इस 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण किया जाता है। जब पितरों का आह्वान किया जाता हैं और उन्हें शास्त्रविधि के अनुसार हवि, पिण्ड आदि समर्पित किये जाते हैं तब 'स्वधा' शब्द का प्रयोग किया जाता है न कि स्वाहा का। यह स्वाहा शब्द बड़ा सामर्थ्य पूर्ण है अतः इसे वाक् देवी की ही अभिव्यक्ति मान कर इसका सम्मान किया जाता है।

कुछ धार्मिक कृत्य ऐसे हैं जिनका दैनिक जीवन में अनुपालन किया जाना अपरिहार्य होता है और कुछ कृत्यों (कर्म-काण्डों) का विशेष अवसरों, उत्सवों आदि में किया जाना वैकल्पिक होता हैं इन सभी को आरम्भ करने से पूर्व आचमन करते समय 'स्वाहा' का

उच्चारण किया जाता है। मोटे तौर पर किसी भी धर्मिक कृत्य मे पवित्र अग्नि में आहुति, हवि समर्पित करते समय 'स्वाहा' या स्वधा का उच्चारण किया जाता है।

साधक : वैदिक मंत्रों के अन्त में स्वाहा और स्वधा के उच्चारण का क्या लाभ होता है?

साई : जब स्वाहा और स्वधा का मंत्रों के अन्त मे उच्चारण किया जाता है और आहुतियाँ दी जाती है तब वे देवता और पितर प्रसन्न होते हैं जिनको वे आहुतियाँ समर्पित होती हैं। जब वैदिक कर्मकाण्ड को जानने वाले आहुतियाँ समर्पित करने के लिए अग्नि की पूजा करते हैं और यथा निर्धारित स्वाहा का उच्चारण नहीं करते तो वह आहुति देवताओं तक नहीं पहुँच सकती। स्वाहा और स्वधा ऐसे शब्द हैं जो उन देवताओं को या पितरों को प्रसन्न करते हैं जिन्हें वे सम्बोधित होते हैं। वे ऐसे मंत्र हैं जो देवों को जगाते और सावधान करते हैं। ऋग्वेद कहता है, "स्वाहा स्तोऽमस्य वर्मना" स्वाहा के दो अर्थ हैं: (१) मंत्र के उच्चारण के साथ दी गयी आहुति (२) वह वैदिक कथन जिसमें वन्दना, स्तुति या गुणगान हो। इन मे से किसी एक अर्थ को लिया जाता है अथवा दोनों को अपनाया जाता है, देवता उन से प्रसन्न होते हैं तथा उन्हें उन्नति एवं प्रगति वरदान देते हैं जो इन मंत्रों के साथ देवताओं का आह्वान करते हैं, उनका यशोगान करते हैं, उन्हें हवि समर्पित करते हैं, उनकी स्तुति, वंदना करते हैं।

साधक : वरदान देने का क्या अभिप्राय?

साई : वेद के प्रभाव से सम्पन्न शब्दों के साथ देवताओं की की गयी स्तुति के फलस्वरूप वे देवता प्रसन्न होकर आराधक को प्रगति और उन्नति प्रदान करते हैं, आशीर्वाद देते हैं, और उन्हें श्रेष्ठता प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रगतिकारक गुण और अवसर प्रदान करते हैं।

साधक : कृपा करके मुझे ऐसे उदाहरण देकर समझाइये जहाँ वेदों में स्वाहा मंत्र का उपयोग उसके परम्परागत अर्थ के साथ किया जाता है।

साई : केशवाय स्वाहा; प्राणाय स्वाहा; इन्द्राय स्वाहा; ये कुछ उदाहरण हैं; यहाँ मंत्र का अर्थ है स्वाहुतम अस्तुः सुहुर्तम् अस्तु। स्वाहुत्तम् हो। सुहुर्तम् हो!

साधक : स्वाहुतम् और सुहुर्तम् शब्दों का क्या अर्थ है?

साई : इन का अर्थ है जो हवि समर्पित की गयी है वह स्वाहा हो जाय, जल जाय, अर्थात् अच्छी प्रकार पच जाय।

साधक : स्वामी! इससे मन में एक शंका उठती है। अग्नि में जो कुछ डाला जाता है वह तो जल ही जाता है पूरी तरह से, चाहे मंत्र का उच्चारण किया जाय अथवा नहीं। यह तो एक साधारण सा अनुभव हैं इसलिए वह विशेष क्या घटित होता है, क्या प्रक्रिया होती है जब 'स्वाहा' मंत्र का उच्चारण किया जाता है?

साई : 'स्वाहुत' अग्नि में समर्पित आहुति (हवि) का जल जाने या पूर्ण नष्ट हो जाने को ही केवल इंगित नहीं करता। इतना तो केवल सांसारिक दृष्टि से देखा जाता है। वेद (श्रुति) के अनुसार अग्नि का एक दैविक रूप और कार्य है जो कि सामान्य रूप से ज्ञात भौतिक रूप और कार्य के अतिरिक्त है। दैविक रूप इन्द्रियों की पहुँच से बाहर है। इसलिए वेदों का कथन है कि देवताओं की पूजा धार्मिक-कृत्यों और कर्म-काण्डों के माध्यम से की जानी चाहिए। अग्नि या अग्नि देव में देवताओं का प्रभव और सारांश है। अग्नि दैविक तत्व है। जो अग्नि के माध्यम से देवताओं को आहुतियाँ समर्पित करता है वह दैविक गुणों से सम्पन्न हो जाता है। जो इस तथ्य को समझने में समर्थ होते हैं केवल वे ही उस तत्व को प्राप्त कर सकते हैं।

भोक्ता और **भोग्य** दोनों मिलकर जगत को बनाते हैं। जब वे दोनों मिलकर एक हो जाते हैं तो वे **अत्त** कहलाते हैं, अर्थात् भोक्ता। यह व्यवहार है, प्राकृतिक परिणाम है। यह संगत नहीं लगता कि उस 'एकमेव' को 'भोग्य' समझा जाय। अच्छा तो 'भोक्ता' कौन है? वह है अग्नि देव जो आहुतियाँ ग्रहण करता है।

प्रथम दैविक **सत्ताआदित्य** है। इसका आध्यात्मिक प्रतिरूप है **प्राणाग्नि।** अग्नि में आज्य (घृत) और सोम होते हैं। अग्नि में जो आहंतियाँ दी जाती हैं उन्हें 'आहित्यः' कहते हैं। इस शब्द का अर्थ है जो जमा किया गया, स्थापित किया गया। देवता दृष्टि से ओझल रहते हैं। इसलिए उन्हें जो हव्य समर्पित किया जाता है उसे आहुतियाँ कहते हैं।

साधक : जब अग्नि दृष्टि में होती है तब उसे क्या कहते हैं?

साई : तब उसे अग्नि कहते हैं। अग्नि का अर्थ होता है प्रथम इसकी सबसे पूर्व सृष्टि हुई, अतः यह नाम पड़ा जब वह दृष्टि से बाहर (परोक्ष) होती है अग्नि कहलाती है।

साधक : आहुति का क्या अर्थ है?

साई : अग्नि में समर्पित हविस्, निर्धारित विधि के अनुसार प्रज्वलित अग्नि में। इसके अतिरिक्त इस शब्द का अर्थ देवताओं को हविस् स्वीकार करने के लिए आह्वान करने, निमन्त्रित करने से भी है यह विशेष अर्थ भी यह शब्द बताता है। वषट्कार ही स्वाहा मंत्र की अभ्यर्थना करता है। देवता उसी हविस् को स्वीकार करते हैं जिसके लिए उनका आह्वान किया जाता है, आहुति दी जाती है।

स्वाहा नाम सरस्वती को भी दिया जाता है जो वाग्देवी है, वेदवाणी की देवी है। शब्द आत्मा को अभिव्यक्त करता है, अतः उसका स्वाहा नाम भी है। देवी भागवतम् का कथन है कि सर्वोच्च देवी गायत्री और स्वाहा दोनों है। ललिता सहस्त्रनाम में ललिता देवी के स्वाहा और स्वधा दोनों नाम हैं। स्वाहा का अर्थ अन्त होने से भी है

साधक : किस वेद को अथर्व नाम दिया गया है? क्या उसके और भी कई नाम हैं?

साई : हाँ। इस वेद के अनेक लोक-प्रिय नाम हैं— ब्रह्मवेद, अंगिरो वेद (अंगिरो वंशिय अथर्वा ऋषि द्वारा परिदृष्ट), अथर्वांगिरो (अथर्वांगिरस) वेद, भेषज्यवेद, भृग्वागिरस वेद। कालीदास ने वसिष्ठ ऋषि की अथर्व

निधि कह कर प्रशंसा की है। इतनी महान प्रसिद्धि प्राप्त कर लेने के फलस्वरूप वसिष्ठ जी को राजगुरु के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था। उनका चारों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व वेद) पर आधिकार था तथा उन्हें यज्ञों के संचालन और कर्मकाण्ड तथा धार्मिक कृत्य करने एवं कराने के अधिकार प्राप्त थे।

साधक : स्वामी! क्या अथर्व वेद के मंत्रों के कोई विशेष नाम हैं?

साई : अथर्व वेद के मंत्र सिद्ध मंत्र माने जाते है अर्थात् उन मंत्रों से वांछित फल प्राप्त होते हैं। गायत्री मंत्र की अधिष्ठात्री गायत्री देवी मानी जाती है और उसकी स्तुति में ऋग्, यजुर् और साम वेद को देवी के चरण और मीमांसा शास्त्र को उसका अचर और सुस्थिर पक्ष तथा अथर्व वेद को उसका सक्रिय पक्ष कहा जाता है।

साधक : यह बात मेरे समझने में थोड़ी जटिल लगती है। क्या वेद के महत्व समझाने के लिए कोई सांसारिक उदाहरण, उपमा नहीं दी जा सकती जिससे यह महत्व सरलता से समझा जा सके।

साई : अच्छा, तो सुनो। अथर्व वेद एक विशाल वृक्ष है जिसकी ऋग्, यजुर् और साम वेद तना और शाखायें हैं तथा स्मृतियाँ और पुराण पत्तियाँ हैं। एक आदित्य (सूर्य) को ऋग्वेद में ऊर्ध्व, यजुर्वेद में यजुः, सामवेद में साम और अथर्व वेद में यातु के रूप में पूजा जाता है।

साधक : अर्थव का अर्थ क्या है?

साई : अर्थव का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो दृढ़ हो, अचल हो; जिसका स्वभाव स्थिर हो। वेद में अथर्व को व्यापक रूप से प्राण-आत्मा और प्रजापति के समान माना जाता है। इसे प्राण-पति भी कहा जाता है। प्रजापति को घर्षण द्वारा अग्नि की चिनगारी प्राप्त करने और अग्नि को प्रकट करने का श्रेय दिया जाता है। यद्यपि अन्य तीनों में से प्रत्येक वेद को कोई-कोई प्रथम वेद मानता है किन्तु अन्तिम अथर्व वेद को सदा अन्तिम वेद ही माना जाता है।

साधक : इस वेद में परमेश्वर के कितने रूपों का वर्णन हैं?

साई : "यातो रूद्रस्शिवातनोरघोस्पाप नाशनी" कहा जाता है। कहने का अभिप्राय है कि परमेश्वर का दो पृथक-पृथक रूपों में वर्णन किया जाता है— घोर रौद्ररूप में और अविक्षुब्ध शान्त रूप में।

साधक : मै उदाहरण द्वारा समझना चाहता हूँ।

साई : परमेश्वर का नृसिंह रूप भक्त प्रहलाद के लिए निरूद्वेग कारी, शान्त, सुन्दर और हितकारी था किन्तु उसके पिता हिरण्यकशिपु के लिए वही रूप अति भयंकर था क्योंकि वह परमात्मा से अत्यन्त घृणा करता था। इसी प्रकार प्रकृति के भी, जो कि परमात्मा की इच्छा का प्रकट मूर्तरूप है, शान्त और रौद्र रूप हैं। जल प्राणियों के जीवन को बनाये रखने के लिए एक अनिवार्य तत्व है। जहाँ जल शक्ति, स्वाथ्य और जीवन की रक्षा करता है वहीं यह विनाश और मृत्यु कारक भी है।

साधक : क्षमा करें, मैं फिर उदाहरण द्वारा समझना चाहता हूँ।

साई : सभी जीव प्राणियों का अस्तित्व भोजन पर आधारित है। शास्त्रों के अनुसार भोजन तीन प्रकार का होता है— सात्विक (शान्ति और समरसता बढाने वाला), राजसिक (वासनायें और भावावेग, कर्मफल आसक्तियाँ बढाने वाला) और तामसिक (आलस्य और कोतिहीनता को बढ़ाने वाला)। व्यक्ति को अपने भोजन का चुनाव विवेक और नियंत्रण के साथ करना चाहिए और जो भोजन किया जाय उसकी मात्रा सीमित होनी चाहिए। यदि इसके विपरीत भोजन का चयन अविवेक पूर्ण हो, वह सीमा से अधिक मात्रा में खाया जाय तो वही हानिकारक होता है, रोग उत्पन्न करना है और कष्टों का कारण बनता है, ऐसे भोजन की, अन्न की भूमिका भयंकर हो जाती है।

इस तथ्य को वेदों में स्पष्ट किया गया है, जहाँ 'अन्न' के सम्बन्ध में वर्णन है। अन्न शब्द की व्युत्पत्ति 'अद्' धातुओं से है जिसका अर्थ होता है खाना, निगलना, खाने वाला, निगलने वाला। इसका अर्थ हुआ कि जीव प्राणी अन्न खाते हैं और इसके साथ ही जो

प्राणी अन्न खाता है उसको अन्न खाता है। इस प्रकार अन्न हितकारी है और अनिष्टकारी भी।

अर्थव ऋषि और अंगिरस ऋषि जो अथर्व वेद के मंत्रों के दृष्टा थे उन्होंने परमेश्वर और सृष्टि के इन दोनों स्वभावों को पहचाना था। वे रौद्र और शान्त रूप अनुभवकर्त्ता की प्रतीत, के अनुसार अनुभव किये जाते हैं। किन्तु सकल प्रभाव में एवं गहरे अर्थों में ये मंत्र आत्मा के प्रकटीकरण, प्रकाशन तथा मानवता की शान्ति और समृद्धि की हित कामना के लिए हैं।

Library IIAS, Shimla
H 294.572 Sa 21 L
00097919

मूल्य : 9 रुपये